

## “भारतीय समाज की सांस्कृतिक अस्मिता एवं चुनौतियाँ”

डॉ.हरिचरण मीना, व्याख्याता

समाजशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सवाईमाधोपुर(राज.)

**सारांश:**— भारतीय समाज विभिन्न संस्कृतियों से युक्त समाज हैं। इसमें उत्तर से दक्षिण व पूर्व से पश्चिम तक सांस्कृतिक विविधता देखने को मिलती हैं। भारतीय समाज एवं संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति एवं समाज व्यवस्था में से एक हैं। जिसमें प्राचीनता, स्थायित्व, सहिष्णुता, समन्वयता, आध्यात्मिकता, अनुकूलनशीलता, वर्णाश्रम, कर्म व पुनर्जन्म, पुरुषार्थ, ऋण उऋण, संस्कार, जाति व्यवस्था, अनेकता में एकता इत्यादि विशेषताएं पायी जाती हैं। लेकिन वर्तमान में कुछ ऐसी शक्तियाँ पैदा हुई हैं जैसे औद्योगीकरण, नगरीकरण, वैज्ञानिक खोज एवं प्रगति तथा पश्चिम संस्कृति का संघात जिसके फलस्वरूप भारतीय संस्कृति में अनेक परिवर्तन घटित हुए और इसका मौलिक स्वरूप संक्रमण की स्थिति में हैं। अतः भारतीय समाज में संस्कृति की अस्मिता को अक्षुण्ण बनाये रखना सबसे बड़ी चुनौती है।

**मुख्य शब्द:**— सांस्कृतिक विविधता, प्राचीनता, स्थायित्व, सहिष्णुता, समन्वयता, आध्यात्मिकता, अनुकूलनशीलता, वर्णाश्रम, कर्म व पुनर्जन्म, पुरुषार्थ, ऋण उऋण, संस्कार, जाति व्यवस्था, औद्योगीकरण, नगरीकरण, वैज्ञानिक खोज,

**आलेख:**— भारतीय समाज विभिन्न संस्कृतियों से युक्त समाज हैं। इसमें उत्तर से दक्षिण व पूर्व से पश्चिम तक सांस्कृतिक विविधता देखने को मिलती हैं। भारतीय समाज एवं संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति एवं समाज व्यवस्था में से एक हैं। जहाँ भी जीवन है वहाँ समाज है तथा जहाँ भी समाज है वहाँ उसकी संस्कृति अवश्य है। संस्कृति शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है प्रत्येक विषय एवं विद्वानो द्वारा संस्कृति को अपने अपने ढंग से परिभाषित किया गया है। अतः संक्षिप्त में कह सकते हैं कि संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा से लिया गया है जैसे एक हिन्दू व्यक्ति अपने जीवन में अनेक प्रकार के संस्कार सम्पन्न करता है इससे उसके जीवन का परिमार्जन होता है एवं संस्कारो के द्वारा ही एक मानव सामाजिक प्राणी बनता है। अतः संस्कृति का अर्थ विभिन्न संस्कारो द्वारा सामूहिक जीवन के उद्देश्यो की प्राप्ति करना। मजूमदार एवं मदान ने लोगों के जीवन जीने के ढंग को संस्कृति कहा है तो हरस्कोविट्स ने पर्यावरण के मानव निर्मित भाग को संस्कृति कहा है तथा टायलर ने ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, प्रथा एवं ऐसी ही अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश किया है जो मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है। इस प्रकार संस्कृति में भौतिक एवं अभौतिक दोनों ही प्रकार की वस्तुओं को रखा जा सकता है।

भारतीय संस्कृति में प्राचीनता एवं स्थायित्व की महत्वपूर्ण विशेषता देखने को मिलती हैं। हम भारत में प्राचीन काल से वैदिक धर्म को मानते हैं तथा पवित्र वैदिक मंत्रों का तन्मयता के साथ यज्ञ व हवन के समय ब्राह्मणों द्वारा उच्चारण किया जाता है, विवाह भी वैदिक रीति से होता है। भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता की विशेषता के कारण सभी धर्मों, जातियों एवं सम्प्रदायों के प्रति उदारता, सहिष्णुता एवं प्रेमभाव पाया जाता है तथा सहिष्णुता के कारण इसमें विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय भी पाया जाता है। भारतीय संस्कृति समुद्र की भाँति है जिसमें हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी, शक, हूण, सिथियन आदि संस्कृतियों का समन्वय पाया जाता है भारतीय संस्कृति में भौतिक सुख और भोग लिप्सा कभी भी जीवन का ध्येय नहीं माना गया बल्कि शारीरिक सुख के स्थान पर मानसिक एवं आध्यात्मिक सुख व आनन्द को सर्वोपरि माना गया है। भारतीय संस्कृति में धर्म की प्रधानता रही है। भारतीय संस्कृति को अमर बनाने में इसकी अनुकूलनशीलता की प्रवृत्ति का महान योगदान है इसमें समय के साथ परिवर्तित होने एवं अनुकूलित होने की अदभूत क्षमता रही है। भारतीय संस्कृति में वर्णाश्रम के माध्यम से सभी वर्गों के अधिकार एवं कर्तव्यों का सुन्दर समन्वय पाया जाता था। भारतीय संस्कृति में कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्तों में विश्वास किया जाता रहा है तथा सभी के सर्वोदय एवं सभी के कल्याण (सर्वे भवन्तु सुखिनः अर्थात् सभी सुखी हो) की धारणा रही है। इसमें पुरुषार्थ के सिद्धान्त के द्वारा व्यक्तियों के जीवन के प्रमुख लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की कल्पना की है। भारतीय संस्कृति में हिन्दू जीवन व्यवस्था में व्यक्ति पर पाँच प्रकार के ऋण एवं उनसे उद्धार होने के लिए पाँच प्रकार के यज्ञों की व्यवस्था रही है। भारतीय संस्कृति में व्यक्ति को सामाजिक प्राणी बनाने, उसके व्यक्तित्व का विकास करने, उसकी नैसर्गिक प्रवृत्तियों को समाजोपयोगी बनाने के लिए व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, नैतिक परिष्कार हेतु कई संस्कारों यथा—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चुड़ाकरण, कर्णवेद्य, विद्यारम्भ, उपनयन, समावर्तन, विवाह एवं अन्त्येष्टि इत्यादि की व्यवस्था की गई है। इन संस्कारों का उद्देश्य एक विशेष स्थिति और आयु में व्यक्ति को उसके सामाजिक कर्तव्यों का ज्ञान करना था। भारतीय संस्कृति में जाति व्यवस्था एवं सयुक्त परिवार व्यवस्था का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय संस्कृति की एक अनुपम विशेषता अनेकता में एकता की रही है।

भारतीय समाज की सांस्कृतिक अस्मिता के कई आधार रहे हैं। जिसमें धर्म, पुरुषार्थ, कर्म पुनर्जन्म, ऋण, यज्ञ, संस्कार, वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, जाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार इत्यादि का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। जब हम धर्म की बात करते हैं तो मुख्य रूप से धर्म का अभिप्राय कर्तव्य से होता है और कर्तव्य सामाजिक जीवन में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। हिंदू सामाजिक जीवन में धर्म का प्रमुख स्थान है। हिंदुओं का संपूर्ण जीवन धर्म के इर्द-गिर्द घूमता है। प्रातः कालीन उठने से लेकर रात्रि सोने तक जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति अपने जीवन में अनेक धार्मिक क्रियाएं संपन्न करता है। धर्म को सभी जीवों पर दया करने के रूप में और कर्तव्य के रूप में माना गया है। धर्म के अनेक स्वरूप देखे जा सकते हैं जैसे सामान्य धर्म, विशेष धर्म हकदार, राज धर्म, मित्र धर्म, गुरु धर्म, युग धर्म, आपदा धर्म इत्यादि धर्म व्यक्ति को और समाज को नियंत्रित करने में

महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारतीय सामाजिक जीवन में पुरुषार्थ का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। पुरुषार्थ सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति के जीवन में चार प्रमुख लक्ष्य बताए गए। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन्हें ही पुरुषार्थ कहा जाता है। जिन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न व्यक्ति अपने जीवन भर करता है। यह धर्म का अर्थ नैतिक कर्तव्य और नियमों के पालन से माना जाता है ताकि व्यक्ति और समाज दोनों का विकास हो सके। धर्म आत्म संयम, संतोष, दया, उदारता, क्षमा, अहिंसा, कर्तव्य पालन आदि गुणों को ग्रहण करने की प्रेरणा देता है। अर्थ का अभिप्राय केवल धन या संपत्ति से नहीं है। बल्कि उन सभी संसाधनों से है जिनकी सहायता से व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यहां अर्थ शब्द नहीं है बल्कि साधन के रूप में माना गया है। व्यक्ति अपने विभिन्न धार्मिक कर्तव्य के पालन के लिए अर्थ को एक पुरुषार्थ के रूप में महत्व प्रदान करता है। काम का तात्पर्य केवल यौन संतुष्टि नहीं है बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से जीवन के आनंद का उपभोग भी है। काम को भी एक पुरुषार्थ की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया है। यह मनुष्य की प्राणीशास्त्र की आवश्यकता की पूर्ति करता है। संतानोत्पत्ति द्वारा माता-पिता के ऋण से उद्धार होने और समाज की निरंतरता को बनाए रखने में योग देता है। इन तीनों पुरुषार्थों को प्राप्त करने के पश्चात व्यक्ति चौथे पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति का प्रयत्न करता है। मोक्ष का अर्थ पूर्ण संतुष्टि की स्थिति से माना गया है। इस स्थिति में व्यक्ति ब्रह्मानंद की अनुभूति और परमानंद की प्राप्ति करता है और जीवन मरण के बंधुओं से छुटकारा पाता है। भारतीय समाज की सांस्कृतिक अस्मिता के रूप में कर्म और पुनर्जन्म का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान माना गया है। यहां व्यक्ति को संसार से विरक्त होने का उपदेश नहीं दिया गया है बल्कि संसार में रहते हुए फल की इच्छा किए बिना कर्म करते रहने और दायित्व का निर्वहन करने पर जोर दिया गया है। कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धांत व्यक्ति में नैतिक उत्तरदायित्व की भावना को भी विकसित करता है। उसे कर्तव्य बोध कराता है व्यक्ति अपने कर्म के प्रति सजग रहें और दायित्व की भावना से कार्य करता रहे। इसके लिए पुनर्जन्म की धारणा पर भी जोर दिया गया है। आज व्यक्ति जो कुछ है चाहे वह धनी है या निर्धन है सुखी है या दुखी है उच्च पद पर आसीन है या निम्न पद पर आसीन है। सब कुछ उसके पूर्व जन्म के किए गए कर्मों का ही फल माना जाता है। सब कर्मों से व्यक्ति का आगामी जीवन अच्छा और दुष्कर्म उसे बुरा बनता है। यह सिद्धांत व्यक्ति को अपने परिवार वालों और आश्रम से संबंधित कर्तव्य के पालन हेतु अपूर्व प्रेरणा प्रदान करता है। भारतीय समाज की संस्कृति का पिता के रूप में ऋण और यज्ञ का भी अपना उल्लेखनीय स्थान है। सामाजिक जीवन में व्यक्ति पर पांच प्रकार के ऋण माने जाते हैं। देव ऋण, ऋषि ऋण, पित्र ऋण, अतिथि ऋण तथा पुत्र ऋण व्यक्ति जो कुछ है उसका जैसा भी विकास हुआ है उसने जो कुछ प्राप्त किया है। उसके लिए वह दूसरों का ऋणी है। वह देवताओं ऋषियों, माता-पिता, अतिथियों तथा पशु पक्षियों का भी ऋणी है। अतः इनके प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करके वह पांच प्रकार ऋणों के से छुटकारा प्राप्त कर सकता है। इसी हेतु पंचायत की व्यवस्था की गई है साथ ही व्यक्तिवाद पर अंकुश रखने और जीवन को त्याग के आदर्श में डालने के लिए भी यह नियमों का विधान किया गया है। यह यज्ञ व्यक्ति को सभी प्राणियों के प्रति अपने दायित्वों को निभाने की शिक्षा देते हैं। यहां यज्ञ का तात्पर्य दूसरों के प्रति दायित्व निर्वाह से लिया गया है।

कर्तव्यों की पूर्ति को ही यज्ञ कहा जाता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में संस्कारों का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कार का तात्पर्य शुद्धिकरण की प्रक्रिया से है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति को सामाजिक प्राणी बनाने उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना तथा उसकी नैसर्गिक प्रवृत्तियों को समाज उपयोगी बनाने के लिए व्यक्ति का शारीरिक मानसिक और नैतिक परिष्कार आवश्यक माना गया है। परिष्कार या शुद्धिकरण की पद्धति कोई यहां संस्कार कहा जा सकता है। जीवन को परिष्कृत करने की प्रक्रिया जीवन पर्यंत चलती रहती है अर्थात् संस्कार की प्रक्रिया व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक चलती रहती है। संस्कारों की संख्या अनेक है परंतु प्रमुख रूप से 16 प्रकार के संस्कार माने जाते हैं। इन संस्कारों का उद्देश्य एक विशेष स्थिति और आयु में व्यक्ति को उसके सामाजिक कर्तव्यों का ज्ञान कराना है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में संगठनात्मक आधारों को भी महत्वपूर्ण माना जाता है। जिसमें वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, जाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार इत्यादि प्रमुख हैं। वर्ण व्यवस्था भारतीय सामाजिक संगठन की आधारशिला के रूप में मानी जाती है। यहां जन्म की वजाय व्यक्ति के गुण तथा स्वभाव के आधार पर समाज को चार भागों में विभाजित किया गया। जिसमें प्रत्येक वर्ण के अधिकार दायित्व और व्यवसाय एक दूसरे से भिन्न थे। प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने वर्ण धर्म के अनुरूप कर्तव्यों का पालन करें। वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत ब्राह्मणवाद की स्थिति सबसे उच्च थी परंतु इस व्यवस्था के आरंभ में जन्म पर आधारित नहीं होकर व्यक्ति के और गुण और स्वभाव पर आधारित होने के कारण व्यक्ति का वर्ण परिवर्तन करना संभव था। व्यक्ति अपने कर्म से किसी भी वर्ण का सदस्य हो सकता था। परंतु धीरे-धीरे वर्ण व्यवस्था कर्म के आधार के स्थान पर जन्म आधारित होने लग गई। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में आश्रम व्यवस्था का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आश्रम व्यवस्था का उद्देश्य व्यक्ति के जीवन को संतुलित और संगठित बनाए रखना था। अतः व्यक्ति की आयु 100 वर्ष मानते हुए उसे चार भागों में विभाजित किया गया है। जिन्हें चार आश्रम कहा जाता है। ब्रह्मचारी आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थाश्रम, संन्यास आश्रम। व्यक्ति अपनी आयु के प्रथम 25 वर्ष ब्रह्मचारी आश्रम में बिता कर अपने व्यक्तित्व का विकास करता था। अपने आप में सद्गुणों को विकसित करता था। शारीरिक मानसिक बौद्धिक दृष्टि से अपने को सफल बनाता था। उसके बाद वह विवाह संस्कार के द्वारा गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। जहां वह धर्म की मर्यादा के अनुरूप अर्थ और काम का उपभोग करता, धन कमाता और अपनी काम इच्छाओं की पूर्ति करता हुआ संतानोत्पत्ति करता था। वहां पर प्रतिदिन पंच महायज्ञ करता हुआ समाज के अन्य सदस्यों तथा पशु पक्षियों तक के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करता था। 50 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने पर वह वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। वह परिवार की सीमा से बाहर निकलकर संपूर्ण समाज के कल्याण हेतु कार्य करता था। वह ज्ञान का प्रसार और समाज की सांस्कृतिक परंपराओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्थानांतरित करते तथा योग्य व्यक्तियों के निर्माण में योग्यता अनुसार आध्यात्मिक चिंतन में अपने आप को लगा देता है। 25 वर्ष की आयु पूर्ण करने पर वह संसार से विरक्त होकर सन्यास आश्रम में प्रवेश कर अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष प्राप्ति का वेतन करता था। इस प्रकार आश्रम व्यवस्था के माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन में चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने की दिशा

में आगे बढ़ता। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति व्यवस्था का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय समाज हजारों ऐसी जातियों और उप जातियों समूह में बटा हुआ है। जिन की सदस्यता का आधार व्यक्ति के गुण और स्वभाव में होकर उसका जन्म होता है। भारतीय समाज में कालांतर में स्तरीकरण के आधार के रूप में उसके गुण और स्वभाव का स्थान जन्म ने ले लिया है।

जिसके परिणाम स्वरूप वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था के रूप में बदल गई। प्रत्येक वर्ण में अनेक जातियां हो गई जाति की सदस्यता पूर्णता जन्म पर आधारित होती है। यद्यपि वर्ण परिवर्तन तो फिर भी संभव था परंतु एक व्यक्ति अपने जीवन काल में जाति की सदस्यता छोड़कर दूसरी जाति की सदस्यता नहीं ले सकता।

सदियों से भारतीय संस्कृति की उपर्युक्त विशेषताएं भारतीय समाज में विद्यमान रही हैं। किन्तु वर्तमान में औद्योगीकरण, नगरीकरण, वैज्ञानिक खोज एवं प्रगति तथा पश्चिमी संस्कृति के संघात के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति में अनेक नवीन परिवर्तन घटित हुए हैं और इसका मौलिक स्वरूप संक्रमण की स्थिति में हैं। आज हम आध्यात्मवाद से भौतिकवाद की ओर अग्रसर हो रहे हैं, धर्म का प्रभाव कम होता जा रहा है, कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्तों में लोगों की आस्थाएं कम हुई हैं, पुरुषार्थ, ऋण, यज्ञ, और संस्कार की अवधारणाओं के प्रति लोगों का रुझान क्षीण हुआ है। संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा है और उसके स्थान पर एकाकी परिवारों की संख्या बढ़ रही है। संयुक्तता एवं सहकारिता के मूल्यों का ह्रास हो रहा है। स्पष्ट है कि सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति परिवर्तन के दौर में हैं अतः आवश्यकता भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने की है। पाश्चात्य संस्कृति के दुष्प्रभाव से लोगों को सचेत एवं जागृत रहने की आवश्यकता है।

**निष्कर्ष:—** उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कह सकते हैं कि भारतीय समाज की सांस्कृतिक अस्मिता महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय है। भारतीय समाज विभिन्न संस्कृतियों से युक्त समाज है। इसमें उत्तर से दक्षिण व पूर्व से पश्चिम तक सांस्कृतिक विविधता देखने को मिलती है। भारतीय समाज एवं संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति एवं समाज व्यवस्था में से एक है। जिसमें प्राचीनता, स्थायित्व, सहिष्णुता, समन्वयता, आध्यात्मिकता, अनुकूलनशीलता, वर्णाश्रम, कर्म व पुनर्जन्म, पुरुषार्थ, ऋण उऋण, संस्कार, जाति व्यवस्था, अनेकता में एकता इत्यादि विशेषताएं पायी जाती हैं। लेकिन वर्तमान में कुछ ऐसी शक्तियाँ पैदा हुई हैं जैसे औद्योगीकरण, नगरीकरण, वैज्ञानिक खोज एवं प्रगति तथा पश्चिम संस्कृति का संघात जिसके फलस्वरूप भारतीय संस्कृति में अनेक परिवर्तन घटित हुए और इसका मौलिक स्वरूप संक्रमण की स्थिति में हैं। अतः भारतीय समाज में संस्कृति की अस्मिता को अक्षुण्ण बनाये रखना सबसे बड़ी चुनौती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:—

1. मजूमदार एवं मदान, 'एन इन्ट्रोडक्शन टु सोशल एन्थ्रोपोलॉजी' एशिया पब्लिशिंग हाउस बोम्बे 1967
2. हरस्कोविट्स, एम.जे. 'मैन एण्ड हिज वर्क'
3. टायलर, ई.बी. 'प्रिमिटिव कल्चर'
4. समाचार पत्र—पत्रिकाएं